THE TIMES OF INDIA

Date: 23-07-24

Cooking It Just Right

SC order banning display of names at eateries along Kanwar route removes a govt-created blot

TOI Editorials

The Supreme Court's interim order putting a pause on UP, Uttarakhand and MP govt directives – for food stalls, shacks and eateries along the route of Shiv bhakts' annual trek, 'kanwar yatra', to display their names and their staff's – is a relief for both proprietor and pilgrim. States were wrong to enforce, with gusto and precision, such a measure. As SC said, food laws require that menus be displayed, and food be correctly labelled. People, petitioners argued, visit restaurants basis the menu, not who's serving or cooking – which directly feeds into politics of "untouchability". Thus, the case stood on the trinity of, SC said, "safety, standard and secularism".

Livelihood hit | The measure had a chilling effect with restaurants forced to ask Muslim employees to stand down during the yatra. The workers, largely pasmanda, would thus lose wages, and proprietors, their workers. The kanwar yatra has been the busiest season for decades for these eateries, fruit sellers and food stalls on the 240km odd route with multiple paths, catering to hungry, thirsty, exhausted walkers. The non-compliant would have had to cough up fines. The choice then was between a fine and the possibility of economic boycott. It was unconscionable for states to roll out such a targeted measure that hits livelihoods of certain sections during a certain festival along a certain route – Muslims along UP's districts, and OBC/Dalit-concentrated pockets in districts from UP into Uttarakhand.

Introducing a fault | Any rationale was missing from the word go. Unsurprisingly, directives drew new fault lines. Several kanwars too criticised the directive. There's, after all, also the matter of choice. Peer pressure is big in community activity such as this. If a kanwar were to patronise a restaurant against his group's choice, it might destroy camaraderie within kanwar groups. SC's order rightly brings pause. But these govt directives should be altogether nixed. They speak to poor governance, and poorer politics.

THE HINDU

Date: 23-07-24

Quest for quota

Bangladesh needs to address its booming unemployment crisis

Editorial

The violent student protests in Bangladesh against the controversial job quota system, which have claimed at least 163 lives, have exposed the fragility of the civil society-state relationship in Prime Minister Sheikh Hasina's country, despite her back-to-back election victories. While the trigger was a High Court decision, last month, to reintroduce the old quota system — 56% of government jobs for different categories, including 30% for the descendants of freedom fighters — Ms. Hasina's handling of the crisis made the situation worse. When student protests, backed by the opposition Bangladesh Nationalist Party, broke out, she dismissed the protesters as Razakars, which is considered to be derogatory as it refers to those who aided the Pakistani military's genocide of locals in erstwhile East Pakistan prior to the creation of Bangladesh. There were also allegations that the student wing of Ms. Hasina's Awami League attacked the protesters, besides police and paramilitary forces. The crisis spiralled out of control, bringing Dhaka, the megacity of 10.2 million people, to a grinding halt. On Sunday, the Bangladesh Supreme Court scaled back the quota system, offering a major victory to the protesters. The 30% quota has now been brought down to 5%, and remaining reservations to 2%, while 93% government jobs would be open for all Bangladeshis.

The quota system, established in 1972, has been a sensitive issue for years. In 2018, after violent protests, Ms. Hasina scrapped all reservations through an executive order. The protesters' opposition now is driven by both the economic realities of the South Asian nation of 170 million and political concerns. Despite rapid economic growth under Ms. Hasina's leadership, Bangladesh remains a poor country where youth unemployment stands at around 20%. Government jobs are seen as more stable and highly sought after. Growing frustration among the youth has been a social time bomb. The protesters and opposition parties also say the quota system mostly benefits the Awami League, which fought for independence, and helps the ruling party tighten its grip over the bureaucracy. The Supreme Court's order has come as a relief for both sides. Ms. Hasina should be willing to talk to the protesters and opposition leaders to find a lasting solution by reforming the reservation system. The Prime Minister's high-handed style and the persistent hostility between the government and the opposition are also hurting the country's institutions and weakening its political system. Ms. Hasina should show accountability by ordering an independent investigation into the high number of deaths of protesters. And in the long run, her government should address the booming unemployment crisis, which, if left unchecked, will come back to haunt her one way or the other.

दैनिक भास्कर

Date: 23-07-24

नीतियां गलत हों तो उनमें तुरंत सुधार होना चाहिए

संपादकीय

एक आधुनिक, उभरती अर्थव्यवस्था के राजकाज में प्रशासनिक ही नहीं, नीतिगत गलतियां भी हो सकती हैं। लेकिन सरकार का काम है, उन्हें तत्काल पहचानना और उनमें संशोधन करना। किसान कानून बगैर जनविमर्श के तैयार किए गए और इनके हानि-लाभ पर व्यापक चर्चा किए बिना ये आनन-फानन में पारित किए गए। किसानों को शक हुआ कि सरकार पूंजीवादी व्यवस्था की पोषक है और उत्पादन सभी साधन पूंजीपतियों के हाथों में देना चाहती है। लिहाजा विरोध हुआ। सरकार की मंशा जो भी रही, लेकिन उसका राजनीतिक घाटा भी उठाना पड़ा। देर आयद दुरुस्त आयद, कानून खत्म किए गए। नोटबंदी भी एक ऐसा ही फैसला था, जो गवर्नेंस के शीर्ष पर बैठे लोगों ने बगैर व्यापक चर्चा के अचानक कर लिया। न्याय प्रणाली को लेकर तीन कानून बने। तीनों के नामों का भारतीयकरण तो हुआ ही, दंड संहिता की हर धारा की संख्या बदल दी गई। करीब 250 वर्षों से जुबान पर चढ़ी हत्या की दफा 302 आईपीसी अब 101 बीएनएस कहलाएगी। सवाल है कि क्या धाराओं की संख्या बदले बिना सामान्य संशोधन से नहीं किया जा सकता था? कुल 23 में से 18 अध्याय यथावत पुरानी संहिता से लिए गए हैं। यानी संशोधन या नए कानूनों की संख्या इतनी नहीं है कि देश की न्याय व्यवस्था, पुलिस, अभियोजन, वकील और आम जनता को पूरी की पूरी संहिताओं से दो-चार कराया जाए। फिर जब इतना व्यापक और प्रोग्रेसिव सुधार (बकौल गृहमंत्री) करना ही था तो क्या इसे देश की सबसे प्रमुख पेशेवर संस्था विधि आयोग को भेजने की जगह मात्र चुने हुए कुछ लोगों के जरिए बगैर किसी विपक्ष के, मात्र दो दिन में पारित कराना किसान कानून सरीखी गलती नहीं मानी जाएगी ? गलतियों को समय रहते सुधारना राजधर्म का मुख्य तकाजा है।

Date: 23-07-24

छोटे दुकानदारों से ही क्यों मांगे जाते हैं तमाम ब्योरे?

विराग गुप्ता, (सुप्रीम कोर्ट के वकील, 'अनमास्किंग वीआईपी' पुस्तक के लेखक)

कांवड़ के मार्ग में नाम की तख्ती लगाने सम्बंधी विवाद पर सुप्रीम कोर्ट के स्थगन आदेश के बावजूद बहस खत्म नहीं हुई है। इस पर धर्माचार्यों के बयानों में कालनेमि का उल्लेख आया है। मारीच के बेटे कालनेमि राक्षस ने कपट वेश धारण करके हनुमान जी को रोकने की कोशिश की थी। दरअसल भारत का समाज, संविधान और अर्थव्यवस्था सभी 'कालनेमि सिंड्रोम' के संकट से जूझ रहे हैं। लगभग 10.7 लाख कम्पनियों में से 56.5% की जीरो आमदनी है, जबकि 842 का

62% आमदनी पर आधिपत्य है। अमेरिका और जर्मनी की अर्थव्यवस्था पहले और तीसरे नम्बर पर है। वहां 50% और 61.3% से ज्यादा वयस्क लोग आयकर देते हैं। भारत में सिर्फ 2.2% लोग आयकर देते हैं, जिनमें से लगभग 6 लाख 47.6% टैक्स देते हैं। 60% से ज्यादा आबादी को फ्री सरकारी राशन, अग्निवीर और आरक्षण पर चल रहे विवादों से गरीबी, बेरोजगारी, असमानता और सम्पत्ति के केंद्रीकरण जैसे मर्ज की पुष्टि होती है। अर्थव्यवस्था में घुसे कालनेमि के विनाश के लिए बजट के माध्यम से 6 पहलुओं पर एक्शन लेना चाहिए।

1. ई-कॉमर्स में विक्रेता : ई-कॉमर्स कम्पनियां खुद को एग्रीगेटर बताते हुए ग्राहकों को अपना माल भी बेचती हैं। वेयरहाउसिंग से लेकर पूरी चेन पर नियंत्रण होने के बावजूद ये कम्पनियां इंटरमीडियरी की सुरक्षा के नाम पर टैक्स की हेराफेरी करती हैं। कांवड़ के मार्ग की तर्ज पर ई-कॉमर्स कम्पनियों की वेबसाइट, ऐप और प्रोडक्ट से जुड़ी कम्पनियों के रिश्तों का खुलासा जरूरी है। इससे दुकानदारों की आमदनी बढ़ने के साथ सरकारी खजाने को ज्यादा टैक्स मिलेगा।

2. पैन नम्बर : दिल्ली में आप पार्टी के घटनाक्रम से साफ है कि नेताओं की शराब माफिया के साथ मिलीभगत है। अनेक राज्यों में नेताओं की सरपरस्ती में माइनिंग माफिया ने लूट मचा रखी है। कालेधन, भ्रष्टाचार और अपराध के नेटवर्क को उजागर करने के लिए नेताओं के सभी होर्डिंग, सभाओं, रैली, रोड शो में खर्च की रकम और भुगतान करने वाले का पैन नम्बर सार्वजनिक होना चाहिए।

3. स्थायी प्रतिष्ठान : टेक और सोशल मीडिया कम्पनियां सिंगापुर और दूसरे देशों के माध्यम से भारत में मुनाफा कमा रही हैं। भारत में इनकी 100% सब्सिडरी कम्पनियां, ऑफिस और कर्मचारी काम करते हैं। इसके बावजूद इन पर आयकर और कम्पनी कानून के अनुसार परमानेंट एस्टेब्लिशमेंट के नियम लागू नहीं होते। टेक कम्पनियां आयकर और कम्पनी कर की चोरी करने के साथ जीएसटी रिफंड में भी फर्जीवाड़ा कर रही हैं। भारत में व्यापार कर रही हर विदेशी कम्पनी का स्थायी पता और मालिक का नाम उनकी वेबसाइट व ऐप में प्रदर्शित करना जरूरी हो।

4. दिवालिया कंपनियों के प्रमोटर : बायजू, पेटीएम और कू जैसी कंपनियों के प्रमोटर निजी संपत्ति की गारंटी के बगैर बड़ा कर्जा ले लेते हैं। इसलिए कंपनियों के दिवालिया होने से उनकी सेहत में बदलाव नहीं आता। कम्पनियों के पैसे से प्रमोटर और डायरेक्टर निजी इस्तेमाल के लिए गाड़ी, मकान, पार्टी और शादी के खर्चे करके आयकर में छूट भी लेते हैं। इसलिए ऐसे सभी खर्चों में डायरेक्टर के टिन नम्बर और कम्पनियों के जीएसटी नम्बर डिस्प्ले होना चाहिए।

5. एफडीआई और शेयर मार्केट : बैंक लॉकर बरकरार रखने के लिए जनता को केवाईसी के नाम पर दस्तावेज देना पड़ रहे हैं। लेकिन शेयर मार्केट में मॉरीशस-सिंगापुर से आने वाले निवेश की पड़ताल भी नहीं होती। छोटे दुकानदारों से जो विवरण मांगे जा रहे हैं, उसी तर्ज पर विदेशी निवेश की भी जांच हो।

6. टेक कम्पनियों का विवरण : डंडे के जोर पर छोटे दुकानदारों से नियम लागू कराने वाला प्रशासन बड़ी कंपनियों के आगे फेल हो जाता है। बड़ी कम्पनियों का आधिपत्य है। इन कम्पनियों से जुड़ी सेवाओं पर इनके संचालकों का नाम और नम्बर डिस्प्ले हो तो संविधान में किए गए समानता के प्रावधान प्रभावी तरीके से सफल होंगे।

Date: 23-07-24

हिमालय के क्षेत्र में विकास चुनौती बनता जा रहा है

डॉ. सीमा जावेद, (पर्यावरणविद, जलवायु परिवर्तन एक्सपर्ट)

जोशीमठ डरावने संकेत दे रहा है। मुसीबत सिर्फ इस इलाके में नहीं बल्कि खतरा पूरे हिमालयीन क्षेत्र के लिए है। जोशीमठ, बद्रीनाथ और केदारनाथ का प्रवेश द्वार होने के लिहाज से हमारे लिए बेहद महत्वपूर्ण है। यह तीन महत्वपूर्ण तीर्थस्थलों- हेमकुंड साहिब, बद्रीनाथ और शंकराचार्य मंदिर जाने का रास्ता है। चार धाम यात्रा करने वालों के लिए भी यही रास्ता है। इसलिए इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में योजनाबद्ध तरीके से निर्माण होना चाहिए। लेकिन यहां बेतरतीबी से हो रहा विकास मुसीबत बनता जा रहा है।

हिमालयी इलाके भूस्खलन से अस्थिर होकर अपरिवर्तनीय क्षय में प्रवेश कर रहे हैं। इन इलाकों में बेतरतीब और बिना सोचे-समझे हुए शहरीकरण, बदलती जलवायु और हमारी अक्रियाशीलता इसके लिए सीधे तौर पर जिम्मेदार है। शहरीकरण के चलते पहाड़ों पर कंक्रीट में बदल रहे लकड़ी के घर, अनप्लांड कंस्ट्रक्शन, टूरिस्ट इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए बढ़ रहे होटल-रिजॉर्ट आदि में बेतहाशा इजाफा, जल विद्युत परियोजनाओं के चलते नदियों के प्राकृतिक प्रवाह में बाधा, पर्यावरण के लिहाज इस संवेदनशील क्षेत्र में बेतरतीब निर्माण और नियमों की अवहेलना का एक और नमूना है।

हिमालय का दरकना जलवायु परिवर्तन की वजह से मौसम के बिगड़े तेवरों की मिली जुली कहानी भी बयां करता है, जो प्राकृतिक और मानव निर्मित दोनों है। जलवायु परिवर्तन के कारण वायुमंडल में नमी की मात्रा बढ़ रही है, जिससे भारी बारिश और खतरनाक हीटवेव आ रही हैं। इस साल उत्तराखंड ने पिछले दो महीनों में चरम मौसम की स्थितियों का सामना किया है। देहरादून में 9 जून से 20 जून तक लगातार 11 दिनों तक तापमान 40℃ डिग्री से अधिक रहा। वहीं, मई में भी शहर में आठ दिनों तक तापमान 40 डिग्री ℃से ऊपर दर्ज किया गया। मुक्तेश्वर में मई में कम से कम पांच मौकों पर तापमान लगभग 30℃ डिग्री रहा, जो पहाड़ी इलाकों में हीटवेव का संकेत है।

जलवायु परिवर्तन के कारण बढ़ते तापमान और लंबे सूखे की अवधि ने जंगलों में आग की घटनाओं को भी बढ़ा दिया है। जून में जहां अधिकतम तापमान ने रिकॉर्ड तोड़े, वहीं जुलाई में मूसलधार मानसूनी बारिश ने बाढ़ और भूस्खलन की स्थिति पैदा कर दी। 1 जून से 10 जुलाई तक उत्तराखंड में कुल बारिश 328.6 मिमी दर्ज की गई, जो सामान्य 295.4 मिमी से 11% अधिक है। इस समय, राज्य के सभी 13 जिलों में जुलाई के महीने में बारिश का अधिशेष दर्ज किया गया है। देश का एक बड़ा हिस्सा सिस्मिक जोन-5 में आता है, जो भूकंप की दृष्टि से सबसे अधिक संवेदनशील है। इसमें उत्तराखंड भी शामिल है। पर्वतीय क्षेत्रों की प्राकृतिक संपदा का दोहन तो किया ही गया, वहां से निकलने वाली नदियों से भी छेड़छाड़ की गई।

उत्तराखंड कोई अकेला राज्य नहीं है, जहां पर घरों और अन्य भवनों के निर्माण में सिविल इंजीनियरिंग के मानकों की धज्जियां उड़ाई गई हों। उत्तराखंड जैसी ही कहानी हिमाचल की भी है। पर्वतीय क्षेत्रों में किए जाने वाले अंधाधुंध निर्माण को लेकर पर्यावरणविदों एवं वैज्ञानिकों ने बार-बार आगाह करने की कोशिश की लेकिन ना तो वहां रहने वालों ने और ना स्थानीय सरकारों ने इस बारे में कोई खास तवज्जो दी।

दैनिक जागरण

Date: 23-07-24

दुकानदार का नाम

संपादकीय

जैसे आसार थे, वैसा ही हुआ, उत्तर प्रदेश में कांवड़ यात्रियों के मार्ग की दुकानों पर उनके मालिक का नाम लिखने के निर्देश का मामला सुप्रीम कोर्ट पहुंच गया। फिलहाल सुप्रीम कोर्ट ने इस निर्देश पर रोक लगा दी और चूंकि ऐसे ही निर्देश उत्तराखंड सरकार ने भी जारी किए थे और मध्य प्रदेश सरकार की ओर से भी जारी किए जाने की चर्चा हो रही थी, इसलिए उसने तीनों राज्य सरकारों को नोटिस जारी किए। दुकानदारों को अपनी दुकान पर अपना नाम लिखने संबंधी निर्देश इसलिए प्रश्नों के घेरे में था, क्योंकि यह स्पष्ट नहीं था कि आखिर इसका उद्देश्य क्या है? उत्तर प्रदेश में मुजफ्फरनगर प्रशासन की ओर से कांवड़ मार्ग के दुकानदारों को अपनी दुकानों पर अपना नाम लिखने का निर्देश जारी करते हुए यह कहा गया था कि ऐसा भ्रम को दूर करने के लिए किया जा रहा है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं था कि आखिर किस तरह का भ्रम? मुजफ्फरनगर प्रशासन का उद्देश्य कुछ भी हो, उसके निर्देश से यह संदेश निकला कि कांवड़ियों को परोक्ष रूप से यह संदेश देने की कोशिश की जा रही थी कि उन्हें मुस्लिम नाम वाली दुकानों से खाने-पीने की सामग्री न खरीदने का विकल्प दिया जा रहा है। चूंकि अब सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि दुकानदारों को केवल यह बताना होगा कि वे किस तरह का भोजन परोस रहे हैं, इसलिए कांवड़ियों और अन्य लोगों को अपनी पसंद का भोजन खरीदने-खाने की सुविधा और स्वतंत्रता होगी। वास्तव में यही होना चाहिए।

हर किसी को अपनी पसंद का भोजन खरीदने का अधिकार है और लोगों को यह पता होना ही चाहिए कि वे किस तरह की आहार सामग्री खरीद रहे हैं? कांवड़ यात्री ही नहीं, अन्य अनेक लोग भी शाकाहार पसंद करते हैं और कई बार वे उस दुकान से भी शाकाहार लेने से बचते हैं, जहां मांसाहार भी बनता-बिकता है। स्पष्ट है कि सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद कांवड़ यात्रियों और अन्य को यह चयन करने में आसानी होगी कि वे अपनी पसंद का भोजन कहां से खरीदें और कहां से नहीं? फिलहाल यह कहना कठिन है कि आगे इस मामले की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट किस नतीजे पर पहुंचेगा, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए कि कई धार्मिक यात्राओं में हर समुदाय के लोग अपनी दुकानें लगाते हैं। इनमें खाने-पीने की दुकानें भी होती हैं। इसके अतिरिक्त यात्रियों को किस्म-किस्म की सुविधाएं प्रदान करने वाले भी होते हैं। उनके सामने यह बाध्यता नहीं होती कि वे अपना नाम लिखें। यह एक तथ्य है कि अमरनाथ यात्रा में खाने-पीने की सामग्री बेचने वालों के अलावा खच्चर-टेंट वाले भी मुस्लिम होते हैं। इस मामले की आगे की सुनवाई के दौरान सुप्रीम कोर्ट से यह भी अपेक्षा है कि वह यह देखे कि हलाल प्रमाणन के नाम पर जो कुछ हो रहा है, वह कितना सही है?

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 23-07-24

टिकाऊ विकास की राह

संपादकीय

मुख्य आर्थिक सलाहकार (CEA) वी अनंत नागेश्वरन और वित्त मंत्रालय की उनकी टीम द्वारा तैयार आर्थिक समीक्षा (Economic Survey 2024) से एक स्पष्ट संकेत नजर आता है। वह यह कि भारतीय अर्थव्यवस्था महामारी से मजबूती से उबर चुकी है लेकिन विकसित भारत का लक्ष्य हासिल करने के लिए टिकाऊ वृद्धि के लिए निरंतर हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी तथा कई उभरती आर्थिक और नीतिगत चुनौतियों का सामना करना होगा। महामारी के बाद भारत ने उच्च आर्थिक वृद्धि हासिल की है और इस दौरान उसे वित्तीय स्थिरता के साथ भी समझौता नहीं करना पड़ा। अब सबकी नजरें केंद्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण पर होंगी जो मंगलवार को नरेंद्र मोदी सरकार के तीसरे कार्यकाल का पहला बजट (Budget 2024) पेश करेंगी। माना जा रहा है कि इस बजट में अन्य बातों के अलावा देश की अर्थव्यवस्था को लेकर मध्यम अवधि का खाका पेश किया जाएगा।

वृद्धि के नजरिये से देखें तो 2023-24 में देश का सकल घरेलू उत्पाद, कोविड के पहले वाले वर्ष यानी 2019-20 की तुलना में 20 फीसदी अधिक था। इसका अर्थ यह हुआ कि हमने 2019-20 से 2023-24 तक 4.6 फीसदी की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि हासिल की। समीक्षा में कहा गया है कि देश का मौजूदा सकल घरेलू उत्पाद वित्त वर्ष 24 की चौथी तिमाही में महामारी के पहले के स्तर के करीब था। यह भी अनुमान जताया गया है कि देश की अर्थव्यवस्था चालू वर्ष में 6.5 से 7 फीसदी की दर से विकसित होगी। यह दर रिजर्व बैंक के 7.2 फीसदी के अनुमान से कम है। राजकोषीय स्थिति में भी महामारी के समय से अब तक काफी सुधार हुआ है। केंद्र सरकार का राजकोषीय घाटा जो पिछले वर्ष सकल घरेलू उत्पाद के 6.4 फीसदी था, वह वित्त वर्ष 24 में कम होकर 5.6 फीसदी रह गया। कर संग्रह में वृद्धि तथा रिजर्व बैंक की ओर से अनुमान से अधिक स्थानांतरण जहां चालू वर्ष की राजकोषीय स्थिति में राहत प्रदान करेगा, वहीं बढ़ा हुआ सरकारी कर्ज चिंता का विषय है तथा उस पर नीतिगत ध्यान देने की आवश्यकता है।

महामारी के बाद की अवधि में वृद्धि सरकार के पूंजीगत व्यय से अधिक संचालित रही है। वित्त वर्ष 24 में सरकार का पूंजीगत व्यय पिछले वर्ष की तुलना में 28.2 फीसदी बढ़ा और वह वित्त वर्ष 20 में दर्ज स्तर का करीब तीन गुना रहा। बहरहाल समीक्षा में इस बात को उचित ही रेखांकित किया गया है कि अब सरकार के बाद इसे आगे बढ़ाने का काम निजी क्षेत्र का है। निजी क्षेत्र के निवेश में सुधार के आरंभिक संकेत नजर आ रहे हैं लेकिन इस रुझान को बरकरार रखना होगा। जैसा कि समीक्षा में कहा गया है, भविष्य की वृद्धि कई कारकों पर निर्भर करेगी जिनमें भू-राजनीतिक विभाजन और विभिन्न देशों के बीच बढ़ता अविश्वास शामिल है। उदाहरण के लिए 2023 में करीब 3,000 व्यापार प्रतिबंध लागू किए गए। इसके अलावा नीतिगत योजना में उभरती तकनीकों को शामिल करने का भी वृद्धि और विकास पर असर होगा।

अल्प से मध्यम अवधि में जिन क्षेत्रों में नीतिगत ध्यान देने की आवश्यकता है उनमें उत्पादक रोजगार तैयार करना, कौशल की कमी को दूर करना, छोटे और मझोले उपक्रमों को प्रभावित करने वाले गतिरोधों को दूर करना, असमानता से

निपटना और पर्यावरण के अनुकूल बदलाव का प्रबंधन शामिल हैं। बहरहाल यह ध्यान देने वाली बात है कि इनमें से कुछ मुद्दे ज्ञात हैं लेकिन दिक्कत यह है कि भारत उन्हें भलीभांति नहीं हल कर सका। इस बात ने समय के साथ वृद्धि और विकास संबंधी नतीजों को प्रभावित किया। समीक्षा में लंबी अवधि के लिए भी ऐसी नीतियों को भी रेखांकित किया गया जो लंबे समय के लिए कारगर हैं। उदाहरण के लिए कृषि क्षेत्र की दिक्कतें दूर करना, निजी निवेश को बढ़ावा देना और राज्य की क्षमता विकसित करना। सरकार के नए कार्यकाल की शुरुआत मध्यम से लंबी अवधि की वृद्धि रणनीति के समायोजन का सबसे बेहतर समय है। यह देखना होगा कि सरकार इन सुझावों पर किस प्रकार प्रतिक्रिया देती है। समीक्षा में चीन को लेकर भी कुछ अहम सवाल उठाए गए हैं जिन पर नीति निर्माण के दौरान बहस होनी चाहिए।

जनसत्ता

Date: 23-07-24

विकास का अर्थ

संपादकीय

आर्थिक समीक्षा से बजट की रूपरेखा का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसमें पिछले वर्ष की आर्थिक स्थितियों का लेखाजोखा पेश किया जाता है। इसी आधार पर आगामी वर्ष के लिए नीतियां निर्धारित होती हैं। इस वर्ष चूंकि आम चुनाव थे, पूर्ण बजट के बजाय अंतरिम बजट पेश किया गया था। आज इस वर्ष के लिए आम बजट पेश होगा। आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया है कि पिछला वर्ष आर्थिक विकास की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण रहा। कोरोना काल के बाद रोजगार के अवसर बढ़े हैं और बेरोजगारी की दर निरंतर घट रही है। भारत की कुल श्रमशक्ति में से सत्तावन फीसद स्वरोजगार में लगी हुई है। महंगाई के मोर्चे पर जरूर थोड़ी चुनौती उभरती रही है, पर अंतरराष्ट्रीय स्थितियों से तुलना करें तो इस पर अपेक्षाकृत काबू पाया जा सका है। इस वर्ष मानसून अच्छा रहने की वजह से जल्दी ही महंगाई की लक्षित दर हासिल कर ली जाएगी। इससे सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का प्रदर्शन भी बेहतर रहेगा। इस वर्ष विकास दर के साढ़े छह से सात फीसद रहने का अनुमान है। 2030 तक गैर-कृषि क्षेत्र में 78.5 लाख रोजगार सृजित करने की जरूरत रेखांकित की गई है। हालांकि वैश्विक मंदी की वजह से निर्यात के क्षेत्र में चुनौतियां बनी रह सकती हैं।

पिछले वर्ष के आर्थिक रुझानों के आधार पर सरकार ने इस वर्ष निजी क्षेत्र का निवेश बढ़ने का अनुमान लगाया है। इसके लिए निजी क्षेत्र को प्रोत्साहित करने के लिए बजट में प्रावधान किए जाएंगे। यों पहले से निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अनेक बजटीय प्रावधान और योजनाएं लागू की जाती रही हैं। निजी उद्योगों की सुविधा के लिए कर, कर्ज आदि में छूट के अलावा श्रम कानूनों को लचीला बनाया गया। इससे पूंजीगत व्यय लगातार बढ़ा है। पिछले वर्ष निजी क्षेत्र के निवेश में नौ फीसद की बढ़ोतरी दर्ज हुई। वित्तमंत्री ने कहा है कि अब निजी क्षेत्र को अर्थव्यवस्था में अपना योगदान बढ़ाने का वक्त है। अगले वित्तवर्ष में बजट घाटा घट कर साढ़े चार फीसद तक रह जाने की संभावना जताई गई है। नए बजट में कृषि क्षेत्र पर भी ध्यान केंद्रित किया जाएगा। इस आर्थिक सर्वेक्षण में मुख्य रूप से हवाई सेवा क्षेत्र को बढ़ाने, शिक्षा और रोजगार के बीच संतुलन बिठाने, ड्रोन निर्माण में तेजी लाने और राज्यों की क्षमता बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित किया गया है। जाहिर है, आम बजट में इन क्षेत्रों के लिए विशेष योजनाओं पर बल होगा।

हालांकि इस सर्वेक्षण को विपक्ष ने अतिरंजित और आंकड़ों का खेल बताया तथा बजट में व्यावहारिक उपायों पर ध्यान केंद्रित करने की सलाह दी है। दरअसल, आंकड़ों में अर्थव्यवस्था की बुलंदी और व्यावहारिक धरातल पर बेहतरी के बीच कोई सहसंबंध नजर नहीं आता। एक तरफ तो आंकड़ों में तेजी से तरक्की करती अर्थव्यवस्था की गुलाबी तस्वीर नजर आती है, मगर आम जनजीवन के स्तर पर बेहतरी के कोई संकेत नजर नहीं आते। बेशक सरकार महंगाई और बेरोजगारी पर काबू पाने का दम भरती है, पर हकीकत यह है कि लोग रोजमर्रा उपभोग की वस्तुओं की कीमतें बढ़ने और क्रयशक्ति घटने की वजह से परेशान हैं। रोजगार के मोर्चे पर युवाओं को भरोसे का कोई काम मिलना कठिन बना हुआ है। जिस निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन दिया जाता है, वह उस अनुपात में नौकरियां पैदा नहीं कर पा रहा। इसलिए बजट में अगर गंभीरता से व्यावहारिक नीतियों पर विचार नहीं होगा, तो मुश्किलें आसान नहीं होंगी।

Date: 23-07-24

खेती और खुदकुशी

संपादकीय

भारत को कृषि प्रधान देश कहा जाता है, मगर यहां के किसान आज भी कई तरह की समस्याओं और परेशानियों से घिरे हुए हैं। यही वजह है कि किसानों की आत्महत्या के मामले लगातार बढ़ते जा रहे हैं। महाराष्ट्र सरकार की एक रपट के मुताबिक, इस वर्ष जनवरी से जून के बीच राज्य में 1,267 किसानों ने आत्महत्या कर ली। राष्ट्रीय अपराध रेकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों से पता चलता है कि वर्ष 2022 में कृषि क्षेत्र से जुड़े 11,290 लोगों ने आत्महत्या कर ली, जिनमें 5,207 किसान और 6,083 खेतिहर मजदूर थे और इनमें महाराष्ट्र से सबसे ज्यादा थे। इसी तरह वर्ष 2021 में कृषि कार्यों में लगे 10,881 लोगों और 2020 में 10,677 लोगों ने अपनी जान दे दी। किसानों की खुदकुशी के पीछे पारिवारिक कर्ज या आर्थिक संकट को सबसे बड़ी वजह माना जाता है। हालांकि इन आर्थिक परेशानियों के भी कई स्तर हैं। मसलन, प्राकृतिक आपदा, कर्ज का बोझ, फसलों की बढ़ती लागत, घटती आय और फसलों के उत्पादन में गिरावट। महाराष्ट्र सरकार की रपट में कहा गया है कि राज्य में पिछले छह माह में किसानों की खुदकुशी के सबसे ज्यादा मामले विदर्भ क्षेत्र के अमरावती मंडल में सामने आए हैं।

बहुत से किसान खेती के लिए बैंक और साहूकारों से कर्ज लेते हैं और अगर प्राकृतिक आपदा की वजह से फसल बर्बाद हो जाए या उत्पादन कम हो, तो उनके लिए कर्ज चुकाना मुश्किल हो जाता है। उर्वरक, खेती के लिए उपकरण और सिंचाई पर होने वाला खर्च बढ़ रहा है, जबकि किसानों की आय में बढ़ोतरी नहीं हो रही है। लिहाजा, किसानों की आर्थिक परेशानियां बढ़नी स्वाभाविक हैं। लंबे समय से चली आ रही न्यूनतम समर्थन मूल्य के लिए कानूनी गारंटी की मांग भी लंबित है। दूसरी ओर, उद्योग जगत के ऋणों के प्रति सरकार के नजरिए में जो नरमी देखी जाती है, वह किसानों के लिए नहीं दिखती। ऐसे में किसानों की समस्याओं की जटिलता अगर उन्हें आत्महत्या के कगार पर ले जाती है तो इसे

एक नतीजे के तौर पर देखा जा सकता है। इस समस्या के निराकरण के लिए ठोस और कारगर उपाय किए जाने जरूरत है, अन्यथा यह स्थिति और जटिल होगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 23-07-24

संघीय ढांचे पर न आए आंच

डॉ. आशुतोष कुमार

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जब भारतीय संविधान में आरक्षण के प्रावधान को शामिल किया था, तब उन्होंने सोचा भी नहीं होगा कि आरक्षण एक समय भारतीय राजनीति की धुरी बनकर राजनेताओं के लिए एक ऐसा अमोघ मंत्र बन जाएगा, जिसका इस्तेमाल किसी के कल्याण के लिए कम और किसी को परास्त करने के लिए ज्यादा किया जाएगा। आज आरक्षण के पीछे किसी पिछड़े या वंचित समाज के कल्याण की भावना कम और राजनीतिक स्वार्थ अधिक दिखती है। सही मायने में आज आरक्षण राजनीति का झुनझुना बन गया है, जिसे चुनाव जैसे विशेष मौकों पर जनता को रिझाने के लिए बजाया जाता है।

बहरहाल, आरक्षण एक बार फिर चर्चा में है। आरक्षण को लेकर चर्चा के केंद्र बिंदु में है कर्नाटक। कर्नाटक के मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने निजी क्षेत्र की नौकरियों में कन्नड़ लोगों के लिए 100 प्रतिशत आरक्षण को लेकर सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म 'एक्स' पर पहले एक पोस्ट की थी, जिसे बाद में उन्होंने हटा लिया था। उन्होंने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर एक पोस्ट किया था, जिसमें कहा गया है कि कैबिनेट ने कर्नाटक में निजी उद्योगों और अन्य संगठनों में प्रशासनिक पदों के लिए 50 प्रतिशत और गैर- प्रशासनिक पदों के लिए 75 प्रतिशत आरक्षण तय करने वाले विधेयक को मंजूरी दी।

सिद्धारमैया ने पोस्ट में कहा था, 'हमारी सरकार की इच्छा है कि कन्नड़ लोगों को अपनी जमीन पर आरामदायक जीवन जीने का अवसर दिया जाए हम कन्नड़ समर्थक सरकार हैं। हमारी प्राथमिकता कन्नड़ लोगों के कल्याण का ध्यान रखना है। उन्हें कन्नड़ भूमि में नौकरियों से वंचित होने से बचाया जाए। हम कन्नड़ समर्थक सरकार हैं। हमारी प्राथमिकता कन्नडिगास के कल्याण की देखभाल करना है। जब उनके इस पोस्ट पर इस पर हर तरफ छीछालेदर होने लगा। विरोध में प्रतिक्रियाएं आने लगीं, तो दो दिन बाद उन्होंने सोशल मीडिया 'एक्स' प्लेटफॉर्म पर से पिछली पोस्ट हो हटाकर उसमें बदलाव कर दिया। कर्नाटक सरकार ने फिलहाल इस पर रोक लगा दी है। इसके साथ ही कहा जा रहा है कि कर्नाटक सरकार इस बिल पर पुनर्विचार करेगी, लेकिन यहां मौजू सवाल यह है कि आखिर इसकी जरूरत ही क्यों पड़ी। इसके पीछे सरकार की मंशा क्या है? कहीं आरक्षण की आड़ में देश के संघीय ढांचे को ध्वस्त करने की कोशिश तो नहीं की जा रही ? अगर नहीं, तो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए देश की एकजुटता और अखंडता पर प्रहार क्यों किया जा रहा है।

आमतौर पर इस तरह की कोशिश क्षेत्रीय दल की सरकार में की जाती है, क्योंकि क्षेत्रीय दल अपने को उस राज्य के प्रति ज्यादा उत्तरदायी समझते हैं, जहां उनकी सरकार होती है। हालांकि इस तरह की सोच भी देश के संघीय ढांचे के लिए खतरनाक है। फिलवक्त कर्नाटक में तो कांग्रेस की सरकार है, फिर सिद्धारमैया सरकार ने ऐसी संकीर्ण मानसिकता क्यों दिखाई। जाहिर तौर पर इससे राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस को नुकसान उठाना पड़ेगा, लेकिन यहां चिंता का विषय कांग्रेस का नुकसान नहीं, अपितु राष्ट्र का और देश के संघीय ढांचे के नुकसान को लेकर है।

अगर सभी राज्य सरकारें अपनी मर्जी की मालिक हो जाएंगी, तब तो देश का स्वरूप ही बिखर जाएगा। देश है, देश का एक स्वरूप है, उसकी अस्मिता है, तभी आरक्षण है। यह कहना गलत न होगा कि भारत में आरक्षण की व्यवस्था सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों को समृद्ध बनाने के लिए हुई थी, मगर समय के साथ आरक्षण वोट बैंक की राजनीति का शिकार बनती चली गई और अब तो स्थिति इतनी बिगड़ गई है कि आरक्षण की आंच देश की संघीय व्यवस्था पर भी आने लगी है। किसी राज्य में आरक्षण का दायरा बढ़ाने के लिए देश के स्वरूप और उसके संघीय ढांचे को ध्वस्त नहीं किया जा सकता। यह सहज ही समझा जा सकता है कि जब सभी राज्य सिर्फ अपने प्रदेश के लोगों को नौकरी देने लगेंगे। वहां के प्राइवेट सेक्टर में सिर्फ उसी राज्य के लोगों को रखा जाने लगेगा, राब भारत एक संघ रह जाएगा क्या? इसलिए राजनीतिक दलों और राज्य की सरकारों को यह जरूर सोचना होगा कि वे अपने प्रदेश के विकास की बात जरूर सोचें, प्रयास जरूर करें कि प्रदेश के लोगों को अपने ही राज्य में रोजी-रोजगार मिले, किंतु इसका भी ख्याल रखें कि देश की समावेशी संस्कृति को नुकसान न पहुंचे।

क्या कहता है भारतीय संविधान

भारतीय संविधान के भाग तीन में समानता के अधिकार की भावना निहित है इसके अंतर्गत अनुच्छेद 15 में प्रावधान है कि किसी व्यक्ति के साथ जाति, प्रजाति, लिंग, धर्म या जन्म के स्थान पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 15(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है तो वह सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष प्रावधान कर सकता है। वहीं, अनुच्छेद 16 में अवसरों की समानता की बात कही गई है। अनुच्छेद 16(4) के मुताबिक यदि राज्य को लगता है कि सरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह उनके लिए पदों को आरक्षित कर सकता है। वहीं, अनुच्छेद 16(4ए) के अनुसार, राज्य सरकारें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के पक्ष में पदोन्नति के मामलों में आरक्षण के लिए कोई भी प्रावधान कर सकती हैं, यदि राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है, लेकिन इन सबके पीछे संविधान ऐसा कुछ करने की इजाजत नहीं देता जिससे देश की अस्मिता, एकता और अखंडता पर खतरा उत्पन्न हो।

आरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सबसे पहले विलियम हंटर और ज्योतिराव फुले ने 1882 में मूलतः जाति- आधारित आरक्षण प्रणाली का विचार प्रस्तुत किया था। आज जो आरक्षण प्रणाली लागू वह सही मायने में 1933 में लागू की गई थी, जब ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मैकडोनाल्ड ने 'कम्युनल अवार्ड' प्रस्तुत किया था। इस निर्णय में मुसलमानों, सिखों भारतीय ईसाइयों, एंग्लो- इंडियन यूरोपीय लोगों और दलितों के लिए पृथक निर्वाचिका का प्रावधान किया गया। लंबी चर्चा के बाद महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 'पूना पैक्ट' पर हस्ताक्षर किए, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि एक ही हिन्दू निर्वाचन क्षेत्र होगा, जिसमें कुछ आरक्षण होगे।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 23-07-24

कांवड़ और न्यायालय

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय ने पक्ष-विपक्ष में तर्क सुनने के बाद उस विवादास्पद आदेश पर शुक्रवार तक रोक लगा दी है, जिसमें कांवड़ यात्रा मार्ग पर भोजनालयों को मालिकों व कर्मचारियों के नाम प्रदर्शित करने का निर्देश दिया गया था। न्यायमूर्ति हृषिकेश रॉय और न्यायमूर्ति एसवीएन भट्टी की पीठ ने साफ कर दिया है कि खाद्य विक्रेताओं को मालिक, कर्मचारियों के नाम प्रदर्शित करने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालय ने उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और मध्य प्रदेश सरकारों को नोटिस भी दिया है। तय है, याचिकाकर्ता ने अपनी मजबूत दलीलों से सर्वोच्च न्यायालय से अपने अनुकूल अंतरिम आदेश प्राप्त कर लिया है और अब गेंद इन सरकारों के पाले में है, उन्हें अपने आदेश के बचाव में अकाट्य तर्क के साथ पेश होना पड़ेगा। दुकानों-ठेलों पर मालिक को नाम लिखने के लिए बाध्य करने वाला यह आदेश व्यापक है और इससे समाज में एक बड़े बदलाव की शुरुआत हो सकती है। अत: संविधान की रोशनी में आगे बढ़ना चाहिए।

यह अच्छी बात है कि न्यायालय अपने अंतरिम आदेश में भी सतर्क है। न्यायालय की भी यही मर्जी है कि कांवड़ियों (तीर्थयात्रियों) को उनकी प्राथमिकताओं के अनुरूप शाकाहारी भोजन परोसा जाए और स्वच्छता के मानकों को बनाए रखा जाए। न्यायालय को प्रथम दृष्टया भारतीय गणराज्य के धर्मनिरपेक्ष चरित्र की चिंता है और याचिकाकर्ता भी इस मोर्चे पर अपनी आशंकाओं का समाधान चाहते हैं। एक तर्क यह भी है कि केवल नाम या पते के प्रदर्शन से शुचिता या पवित्रता बहाल नहीं होगी और न इच्छित उद्देश्य की प्राप्ति होगी। याचिकाकर्ता के वकील अभिषेक मनु सिंघवी ने तर्क दिया है कि आप किसी रेस्तरां में व्यंजन सूची के आधार पर जाते हैं, न कि कौन परोस रहा है। यदि किसी दुकानदार का नाम-मजहब स्पष्ट हो जाएगा, तो पहचान के आधार पर बहिष्कार की आशंका है। याचिकाकर्ता ने यह भी तर्क दिया है कि अनेक शाकाहारी रेस्तरां के मालिक हिंदू हैं, पर वहां मुस्लिम भी काम करते हैं, तो क्या इस आधार पर भी भेदभाव किया जाएगा? इसमें कोई शक नहीं कि इस आदेश के खिलाफ आशंकाओं की एक लंबी फेहरिस्त तैयार हो गई है। एक दिलचस्प विवरण तो न्यायमूर्ति भट्टी ने सुनाया, 'केरल में एक शाकाहारी होटल है, जिसे एक हिंदू चलाता है और एक होटल मुसलमान चलाता है। एक न्यायाधीश के रूप में मैं उस होटल में जाता था, जिसे मुसलमान चलाता था और वह स्वच्छता का अंतरराष्ट्रीय मानक बनाए रखता था।' मतलब, शुचिता और गुणवत्ता का धर्म से कोई लेना-देना नहीं है, खान-पान सेवा में सही मानसिकता होनी चाहिए।

बहरहाल, कांवड़ यात्रा शुरू हो गई है। सावन का पहला सोमवार बीत चुका है और अब दुकानदारों के साथ ही कांवड़ियों पर भी किसी तरह का दबाव नहीं है, पर दुकानदारों के साथ ही कांवड़ियों और अन्य ग्राहकों को भी सावधानी बरतनी चाहिए। गुणवत्ता और स्वच्छता के प्रति सजगता जरूरी है, यह एक ऐसा मसला है, जिसके लिए केवल सरकारों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। अगर लोग यह तय कर लें कि वहीं खाएंगे और वहीं से सामान लेंगे, जहां विश्वस्तरीय मानक बनाए रखा जाता है, तो आधी से ज्यादा समस्या का समाधान यहीं हो जाएगा। यहां ज्यादा जिम्मेदारी खाद्य एवं स्वास्थ्य

विभाग की है, पुलिस की नहीं। अंतिम फैसले में न्यायालय को जिम्मेदारी का भी स्पष्ट निर्धारण करना चाहिए, ताकि आशंकाओं की कोई गुंजाइश न बचे।

Date: 23-07-24

लोकसेवा आयोग पर बना रहे विश्वास

विभूति नारायण राय, (पूर्व आईपीएस अधिकारी)

आजादी के फौरन बाद जब बहुत सारे औपनिवेशिक अवशेषों को नष्ट करने की मांग उठ रही थी, एक ब्रिटिश निर्मिति को समाप्त करने से तत्कालीन गृह मंत्री और लौहपुरुष के नाम से विख्यात सरदार पटेल ने यह कहकर इनकार कर दिया था कि देश की एकता के लिए इस स्टील फ्रेम की जरूरत है। यह स्टील फ्रेम आईसीएस (इंडियन सिविल सर्विस) और आईपी (इम्पीरियल पुलिस) नामक दो अखिल भारतीय सेवाओं के रूप में मौजूद था। आजाद भारत में उन्हें नए अवतारों आईएएस (इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस) और आईपीएस (इंडियन पुलिस सर्विस) के रूप में सुरक्षित रखा गया। नई बोतल में पुरानी शराब की तरह इन सेवाओं का अहंता, परीक्षा, सेवा शर्तों से संबंधित ढांचा कमोबेश बरकरार रहा।

संविधान लागू होने के बाद एक बड़ा फर्क यह जरूर आया कि संघ और प्रांतीय लोक सेवा आयोगों के रूप में ऐसी स्वतंत्र संस्थाएं बन गई, जो अभ्यर्थियों का एक निश्चित पद्धति से आकलन करती है और फिर वांछित संख्या में उपयुक्त अभ्यर्थियों की सिफारिश सरकार को भेजती है। यह व्यवस्था बहुत प्रभावशाली तरीके से वर्षों तक काम करती रही, पर किसी भी अन्य संस्था की तरह लोक सेवा आयोगों में भी गिरावट आई और इन दिनों कुख्यात पूजा खेड़कर ने बेदर्दी से इस सड़ांध को इस कदर उजागर कर दिया है कि बदबू के मारे हमारी नाक फटी जा रही है।

प्रादेशिक और संघ लोक सेवा आयोगों के सदस्यों को सांविधानिक हैसियत हासिल होने के कारण इन्होंने दशकों तक बेहतरीन काम किया, पर बीते कुछ वर्षों में उनके विरुद्ध जो आरोप लगे हैं, उनसे आम जन का विश्वास डगमगा गया है। पिछले दिनों कई प्रदेश लोकसेवा आयोगों के अध्यक्ष और सदस्य भ्रष्टाचार के आरोपों में हटाए गए, यहां तक गिरफ्तार भी किए गए हैं। कुछ वर्ष पूर्व पंजाब लोकसेवा आयोग के सदस्यों के पास से करोड़ों रुपये बरामद किए गए थे। इसी तरह इलाहाबाद लोक सेवा आयोग के एक अध्यक्ष के विरुद्ध इतने गंभीर आरोप लगे कि उसी शहर में स्थित उच्च न्यायालय को संज्ञान लेना पड़ा। ये तो सिर्फ चंद नमूने हैं।

गिरावट की सबसे बड़ी वजह शायद यह है कि इन संस्थाओं के सदस्यों के रूप में हाड़-मांस के पुतलों की नियुक्ति होती है और उनका चयन करने वाले भी उन्हीं की तरह के मनुष्य ही होते हैं। समस्या की शुरुआत होती है, जब सरकारें सदस्यों या अध्यक्ष के पद पर जाति, क्षेत्र या सिफारिश के आधार पर नियुक्तियां करने लगती है। इन अयोग्य सदस्यों से योग्य अभ्यर्थियों के चयन की अपेक्षा करना उनके साथ ज्यादती ही होगी। संविधान द्वारा स्वतंत्र इस संस्था की राजनीतिक
नियुक्तियां खुद ही अपनी स्वायत्तता समर्पित करने को कितना उत्सुक रहती हैं, इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। मुझे एक लोक सेवा आयोग के परीक्षा नियंत्रक रह चुके मित्र अधिकारी ने एक बार बातचीत के दौरान बताया कि

उनके अध्यक्ष परीक्षा फल घोषित करने के पहले मुख्यमंत्री कार्यालय से हरी झंडी मांग थे। वे मुख्यमंत्री से बात कर यह भी बताना नहीं भूलते थे कि उनकी जाति के कितने उम्मीदवार सफल हुए हैं। ये अध्यक्ष महोदय बड़ी लंबी कानूनी जद्दोजहद के बाद ही हटाए जा सके और उनके कार्यकाल की सीबीआई जांच वर्षों से लंबित है।

पूजा खेड़कर के प्रकरण ने तो पूरे तंत्र की विफलता के नए कीर्तिमान कायम कर दिए हैं। पूरी तरह कम्प्यूटरीकृत संघ लोक सेवा आयोग यह नहीं पकड़ पाया कि पूजा अपने निर्धारित अवसरों से काफी अधिक बारह बार लिखित परीक्षा में बैठी थी। इसके लिए उसे सिर्फ अपने या माता-पिता के नामों की वर्तनी मे छोटे-मोटे हेर-फेर करने पड़े, अपने निवास का पता बदलना पड़ा या अलग-अलग कोणों से खींची गई तस्वीरें फॉर्म पर चिपकानी पड़ीं। यह विश्वास करना मुश्किल होगा कि बिना किसी अंदरूनी मानवीय मदद के संस्था के कंप्यूटरों को धोखा देना इतना आसान रहा होगा। वह एक ऐसी सीट पर चुनी गई थी, जो अन्य पिछड़ा वर्ग के गैर-मलाईदार और शारीरिक अक्षमताओं वाले अभ्यर्थियों के लिए सुरक्षित थी। पूजा का पिता राज्य सरकार का एक रिटायर अधिकारी है। अपनी सेवा के दौरान वह अपनी संपत्ति का वार्षिक ब्योरा जमा करता होगा और निश्चित रूप से यह फर्जी रहा होगा, क्योंकि अवकाश प्राप्ति के बाद जब वह चुनाव लड़ा, तो चुनाव आयोग को दिए विवरणों के अनुसार उसके, उसकी पत्नी और खुद उसकी बेटी पूजा के नाम से करोड़ों रुपयों के मूल्य की चल-अचल संपत्तियां थीं। स्पष्ट है, वह सेवा के दौरान महाराष्ट्र सरकार को दिए गए वार्षिक विवरणों में झूठ लिखता रहा होगा, नहीं तो वहां ही आय से अधिक संपत्ति का प्रकरण बन जाता और वह पकड़ा जाता। संघ लोक सेवा आयोग ने कितनी लापरवाही से पूजा द्वारा दिए गए विवरणों की जांच की, यह तो इसी से स्पष्ट है कि साल-दर- साल वह बिना पकड़े गए फर्जीवाड़ा करती रही।

यह भी कम चिंताजनक नहीं है कि पूजा खेड़कर ने जिन शारीरिक अक्षमताओं का दावा किया था, उनकी पुष्टि कराए बिना उसे नियुक्ति दे दी गई। यहां भी आयोग और नियुक्ति पत्र जारी करने वाले केंद्रीय सरकार के विभाग ने पर्याप्त और जरूरी पड़ताल की परवाह नहीं की। इन विवादों की चर्चा चल ही रही थी कि संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष के इस्तीफे की खबरें मीडिया में गश्त करने लगीं। हालांकि, उनसे जुड़े सूत्रों ने समझाने की कोशिश की है कि इस्तीफे और पूजा प्रकरण में कोई संबंध नहीं है, पर क्या ही अच्छा होता, यदि उन्होंने नैतिक जिम्मेदारी स्वीकार करते हुए यह कदम उठाया होता।

पाठकों ने हिंदी की कालजयी कहानी हार की जीत पढ़ी होगी, जिसमें नायक बाबा भारती को एक ठग द्वारा अपंग बनकर उनका घोड़ा चुराने पर अपनी क्षति से अधिक इस बात की चिंता होती है कि लोग अब किसी असहाय पर विश्वास करना छोड़ देंगे। पूजा खेड़कर का प्रकरण सामने आने के बाद लोगों ने उन तमाम लोगों पर शक करना शुरू कर दिया है, जिन्हें आर्थिक या शारीरिक अक्षमताओं के कारण चवन में मदद मिली है। इनमें से अधिकांश बिना किसी झूठ के अपनी योग्यता के बल पर चुने गए होंगे, लेकिन पूजा ने सबको सदिग्ध बना दिया है। सोशल मीडिया पर चुन-चुनकर उन्हें ट्रोल करना शुरू कर दिया गया है। कोई यह नहीं सोच रहा है कि पहले ही प्रकृति की ज्यादतियों के शिकार इन लोगों पर शक कर हम उन्हें अतिरिक्त घाव दे रहे हैं।

Date: 23-07-24

बढ़ते भारत की बेहतर तस्वीर पेश पर रहा आर्थिक सर्वे

दलीप कुमार, (अर्थशास्त्री)

सोमवार को संसद-पटल पर रखा गया साल 2023-24 का आर्थिक सर्वे विकसित होते भारत की तस्वीर दिखा रहा है। इसमें अनुमान लगाया गया है कि 2023-24 में भारत की वास्तविक जीडीपी में 8.2 फीसदी की वृद्धि हुई, जबकि 2022-23 में यह 6.5 प्रतिशत थी। यह स्थिति तब है, जब विश्व की औसत विकास दर 3.2 प्रतिशत ही है। यही नहीं, भारत की जीडीपी की वृद्धि दर 2024-25 में 6.5 से सात प्रतिशत तक रहने का अनुमान लगाया गया है। अर्थव्यवस्था में यह भरोसा इसलिए बना है, क्योंकि सर्वेक्षण मानता है कि देश का भू-राजनीतिक महत्व, आर्थिक झटकों को झेलने की क्षमता और ठोस व स्थिर घरेलू वृद्धि से भारत आर्थिक रूप से लगातार मजबूत बन रहा है। यही कारण है कि अब विशेष तौर पर शोध व अनुसंधान के क्षेत्र में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने की बात आर्थिक सर्वेक्षण में कही गई है।

बहरहाल, सर्वे में सबकी नजर रोजगार के आंकड़ों पर थी। बेरोजगारी बढ़ने को लेकर लगातार सरकार पर हमला बोला जाता रहा है, मगर आर्थिक सर्वे की मानें, तो देश में बेरोजगारी घटी है। 2017-18 में यह दर जहां 17.8 प्रतिशत थी, वहीं साल 2022-23 में यह घटकर 10 प्रतिशत रह गई। अच्छी बात है कि शहरी बेरोजगारी में भी कमी आई है, भले ही यह बेहद मामूली ही क्यों न हो। दरअसल, आम लोगों की नजर में रोजगार का मतलब सरकारी या स्थायी नौकरी होता है, पर कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, यानी ईपीएफओ के आंकड़ों के आधार पर भी सरकार रोजगार की स्थिति नापती है और यह आंकड़ा बताता है कि 2019 में जहां 61.1 लाख कर्मचारियों के पास ईपीएफओ खाता था, वहीं 2024 में यह बढ़कर 131.5 लाख हो गया। यानी, पांच वर्षों में करीब-करीब दोगुनी संख्या में नए कामगार ईपीएफओ से जुड़े हैं। सुखद है कि श्रमबल में महिलाओं की संख्या भी अच्छी-खासी बढ़ी है और उनमें 2017-18 से लेकर 2022-23 में 16.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

महंगाई को लेकर भी आर्थिक सर्वे में कुछ अलग कहानी दिखती है। मुद्रास्फीति दर, जो 2022-23 में 6.7 प्रतिशत थी, वह 2023-24 में घटकर 5.4 हो गई है। इसमें मूलत: थोक महंगाई दर शामिल है। वैसे, खाद्य मुद्रास्फीति में वृद्धि हुई है और यह पिछले साल के 6.6 प्रतिशत की तुलना में इस वर्ष बढ़कर 7.5 प्रतिशत हो गई, जिसकी ठोस वजहें भी हैं। वास्तव में, जलवायु परिवर्तन को खाद्य मुद्रास्फीति दर बढ़ने की एक बड़ी वजह माना जाता है। प्रकृति का अनुकूल न रहना, अतिवृष्टि, अनावृष्टि जैसे कई कारक हैं, जो हमारी खेती को प्रभावित कर रहे हैं। इन सबसे खाद्य मुद्रास्फीति ऊपर-नीचे होती रहती है। वैसे, विशेषकर आलू, प्याज और टमाटर की कीमतें बढ़ी हैं। चावल, दाल आदि खाद्यान्नों में बहुत ज्यादा उछाल नहीं है।

सामाजिक सुरक्षा की बात करे , तो कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (सीएसआर), यानी कॉरपोरेट जगत की सामाजिक जिम्मेदारी बढ़ी है। यह जिम्मेदारी उन कंपनियों पर लागू होती है, जिनकी सालाना कमाई 1,000 करोड़ या सालाना लाभ पांच करोड़ रुपये है। उनको अपने तीन साल के औसत लाभ का कम से कम दो प्रतिशत समाज की बेहतरी के कार्यों पर खर्च करना होता है। आर्थिक सर्वे के मुताबिक, इस राशि में 53 फीसदी की वृद्धि हुई है और यह 2017-18 की 17,096 करोड़ रुपये की तुलना में बढ़कर 2021-22 में 26,278 करोड़ हो गई है, जो संकेत है कि उद्योगों के लिए देश में माहौल

अनुकूल है। यह भी एक वजह है कि चीनी निवेश की अनुमति दे दी गई है। माना गया है कि द्विपक्षीय रिश्तों में आई खटास के कारण सरकार ने चीनी निवेश पर प्रतिबंध लगा दिया था, मगर आम जनता के हित में अब ऐसा नहीं किया जा सकता। इसका फायदा यह भी होगा कि टैक्स की चोरी नहीं होगी और सरकार के राजस्व में वृद्धि होगी।

आर्थिक सर्वे कृषि विकास दर की बेहतरी का संकेत दे रहा है, जिसमें औसतन चार प्रतिशत की दर से वृद्धि हुई है। कुल मिलाकर, यह सर्वे भारत की तरक्की की गाथा है। उसके मुताबिक, कोरोना महामारी से सुस्त पड़ी अर्थव्यवस्था तेजी से उबर रही है। लिहाजा, जीडीपी के हिसाब से विश्व की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था अब जल्द ही शीर्ष चार में शुमार हो सकती है।